

सिद्ध मार्ग



प्रिय आत्मन् ! सप्रेम जय गुरुदेव ! सिद्धमार्ग पत्रिका का सत्ताईसवाँ अंक प्रस्तुत है । इस अंक में महामण्डलेश्वर स्वामी नित्यानन्द जी द्वारा कुछ समय पूर्व ध्यान और सत्संग विषय पर दिय गए प्रवचन के सम्पादित अंश प्रस्तुत हैं ।



जब हम एकत्रित होकर मिल बैठकर करते हैं वही सत्संग नहीं है, सत्संग तो अभ्यास है जिसे हमें हर समय करने का प्रयत्न करना चाहिए ।

हममें से अधिकतर लोग हमारे साथ, हमारे परिवार, हमारे मित्रों या और जो कुछ भी हमारे आसपास घट रहा है उससे प्रभावित होते हैं, इसी कारण बाबाजी अक्सर संगति की, सत्संग की अर्थात् सत्य के संग की चर्चा करते थे । जब हम एकत्रित होकर मिल बैठकर करते हैं वही सत्संग नहीं है, सत्संग तो अभ्यास है जिसे हमें हर समय करने का प्रयत्न करना चाहिए । कई आश्रमों में, प्रत्येक प्रातः एवं सायं सत्संग करने की प्रथा है । इसका उद्देश्य यही है कि सुबह उठते ही आप कुछ अच्छा सुनें और फिर अपना दिन व्यतीत करें । सत्संग की ओर मुड़कर, सही

आत्मा कुछ ऐसी वस्तु नहीं जिसे हम देख, छू या जान सकें, उसका तो हम केवल अनुभव कर सकते हैं।

राह चुनने से पहले, आप अनेक राहों पर जाते हैं। इसका कारण यह है कि अपना जीवन जीते हुए हम अपनी शक्ति को अलग-अलग ढंग से व्यय करते हैं। हम आंख, कान, नाक, जिह्वा और त्वचा द्वारा सम्पर्क स्थापित करते हैं और यह सब शक्ति का आदान-प्रदान ही है। हम देखते, सुनते, सूंघते और चखते हैं और यह सब हमें थका देता है। फिर हम सो जाते हैं और नींद में हम कोई शारीरिक कार्य नहीं करते और हमारा मन भी कुछ शान्त होता है। अगली सुबह हम तरोताजा होकर उठते हैं और फिर शुरू हो जाते हैं तथा दिन के अंत तक हम फिर थक जाते हैं।

संतजन अपने आप से प्रश्न करते हैं कि जब मैं अपने अन्तर में जाता हूँ तो क्या होता है? बाबा मुक्तानन्दजी अक्सर कहते थे कि जब आप थक कर सो जाते हैं, तब वह आपको कुछ भी अच्छा नहीं लगता जो दिन में आपको रुचिकर लगता है।

हम दिन भर इन वस्तुओं को प्राप्त करने के लिए कठिन परिश्रम करते हैं पर जब हम सोते हैं तब यही वस्तुएँ हमें वह नहीं दे पातीं जो निद्रा देती है। तो क्या होता है? हम अपनी आत्मा के निकट आ जाते हैं! आत्मा कुछ ऐसी वस्तु नहीं जिसे हम देख, छू या जान सकें, उसका तो हम केवल अनुभव कर सकते हैं।

लोग सोचते हैं कि जब मैं अन्तर में जाऊँगा तो मुझे कुछ प्राप्त होगा। पर यह कोई वस्तु नहीं वरन् यह शक्ति है। जब मन शान्त और स्थिर होने लगता है तब वह इस शक्ति की अनुभूति करने लगता है। एक सन्त अपना जीवन जीते हुए भी अपने को एकाग्र और केन्द्रित रखते हैं। और हमारे साथ क्या-क्या होता है? हमारा मन कहीं जाता है और फिर साथ ही आँखें जाती हैं फिर कान और नाक। यह सत्य है कि भौतिक रूप से ये कहीं नहीं जाते पर उनकी सूक्ष्म शक्ति, उनका सार तत्व जाता है। इस

श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि यदि तुम्हारा मन आसक्त ही होना चाहता है तो उसे अपनी आत्मा में आसक्त करो।

शक्ति के प्रवाह को मूल्य चुकाना पड़ता है क्योंकि तब मैं अपनी आत्मा पर केन्द्रित नहीं होता हूँ। मेरा ध्यान, मेरा लक्ष्य पर केन्द्रित न रहकर डगमगा जाता है, अचानक कभी यहाँ कभी वहाँ।

सातवें अध्याय के प्रथम श्लोक में अर्जुन के आचार्य श्रीकृष्ण आसक्ति के विषय में बतलाते हैं:-

मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युञ्जमदाश्रयः ।

असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु ॥

“हे अर्जुन! तू अपने मन को उस आत्मा में आसक्त कर।” हम आसक्त हैं, पर किसमें? यदि हम विचार करें तो हम पाएंगे कि हम अपनी अन्तर की चेतनाशक्ति आत्मा के अतिरिक्त और सभी में आसक्त हैं। इतने समय में हमने जो भी सांसारिक वस्तुएँ एकत्रित की हैं, उन सभी में हमारा मन आसक्त है। हमारा मन घर, पदवी, कार, परिवार जैसी वस्तुओं में आसक्त होता है हमें उनके खो

जाने का भय रहता है। सन्तजन पूछते हैं, “तुम्हारी मृत्यु के पश्चात्, क्या तुम सोचते हो कि इन लोगों में से कोई तुम्हारा शरीर रखना चाहेगा?” चाहे कोई तुम्हें कितना भी प्रेम करता हो, तुम्हें कितना भी चाहता हो, तुमसे कितना भी लगाव हो, जिस दिन तुम्हारी मृत्यु होगी उसी दिन वे तुम्हें श्मशान में जलाने या दफनाने ले जाएंगे।

सन्तजन हमें विचार करने को कहते हैं कि, यह लगाव, यह आसक्ति क्यों? यह आसक्ति ही है जो हमें दुःख और पीड़ा देती है। आसक्ति के कारण ही विभिन्न भावों का अनुभव करते हैं। श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि यदि तुम्हारा मन आसक्त ही होना चाहता है तो उसे अपनी आत्मा में आसक्त करो। इसके लिए विवेक की प्रक्रिया का आरम्भ होना आवश्यक है। मन को विचार-विमर्श करने और समझने का प्रयास करना चाहिए।

नासिरुद्दीन के सभी पड़ोसियों के पास

बाबाजी कहते थे, “यदि मैं आपसे पूछूँ कि आप कहाँ जा रहे हैं, तो आप कहेंगे, मुझसे मत समाज से पूछो!” और यदि हम समाज से पूछें तो समाज कहेगा कि हमें क्या पता, हम तो वहीं जा रहे हैं जहाँ सब जा रहे हैं।

अच्छी किस्म के घोड़े थे। उसने सोचा कि वे सभी अपने घोड़े पर तेजी से यात्रा करते हैं फिर मैं क्यों अपने गधे पर धीरे-धीरे चलूँ। उसने भी घोड़ा ले लिया। नासिरुद्दीन गधे का आदी था जिसको चलाने के लिए उसे दो-चार लातें मारनी पड़ती थीं। एक दिन जब वह घोड़े पर बैठा तो उसने सोचा कि यह तो गधे पर बैठने जैसा ही है। इसमें अन्तर क्या है? बस यह थोड़ा सा बड़ा है, थोड़ा सा तेज भागता है। सो उसने घोड़े को दो-चार लातें मार दीं। घोड़े को धीरे से, हल्के से इशारे की आदत थी न कि इस तरह लातों की। नासिरुद्दीन को आराम से अपने गधे पर बैठने की आदत थी तो वह भी घोड़े पर उसी तरह आराम से बैठ गया। अब जब घोड़े ने दौड़ना प्रारम्भ किया तो वह गिरने लगा। इस पर उसने अपनी टाँगों से घोड़े को पकड़ लिया और लटक गया। वे दोनों इसी तरह गाँव, शहर और बाजार से गुजरे। लोग पुकार कर पूछने लगे, “नासिरुद्दीन

कहाँ जा रहे हो?” नासिरुद्दीन ने उत्तर दिया- “ये मुझसे नहीं घोड़े से पूछो!” बाबाजी कहते थे, “यदि मैं आपसे पूछूँ कि आप कहाँ जा रहे हैं, तो आप कहेंगे, मुझसे मत समाज से पूछो!” और यदि हम समाज से पूछें तो समाज कहेगा कि हमें क्या पता, हम तो वहीं जा रहे हैं जहाँ सब जा रहे हैं। जब हम अपने आप से पूछेंगे कि मैं कहाँ जा रहा हूँ और किस कारण से जा रहा हूँ तो हमें एक क्षण के लिए रुकना पड़ेगा। हमें ठहर कर पूछना होगा क्योंकि हमारा मन आसक्त हो गया है। सभी के साथ यही घटता है और कोई भी क्षणभर रुक कर इसके विषय में नहीं सोचता है।

सन्त ज्ञानेश्वरजी कहते हैं- ‘देवाचिये द्वारी उभा क्षणभरी’ अर्थात् प्रभु के द्वार पर क्षण भर ठहर कर मनन-चिन्तन करना चाहिए क्योंकि हम तो जीवन में भाग रहे हैं। जिस किसी को भी पूछो, यही कहेगा कि मेरे पास समय नहीं है। पर हम कर क्या रहे हैं?

बिजली के बिना बल्ब प्रकाश नहीं दे सकता, पर जैसे ही प्लग का बटन दबाते हैं, वह प्रकाश देने लगता है। ठीक उसी प्रकार आत्मा के अनुभव से जुड़े बिना जीवात्मा प्रकाश देने में असमर्थ है।

आप किसी से भी पूछ लो- इसमें कोई अन्तर नहीं है कि वे कहाँ हैं, चाहे वे आस्ट्रेलिया, भारत, यूरोप, अमेरिका या दक्षिण अमेरिका में हों, सब यही कहेंगे कि मेरे पास समय नहीं है। लोग कहते हैं- काश दिन में 25 घण्टे होते, सप्ताह में दस दिन होते। सन्तजन पूछते हैं कि यदि कल आपकी मृत्यु हो जाए, तब आप नहीं कह सकते कि “मेरे पास समय नहीं है। मृत्यु मेरी प्रतीक्षा करो” तब तो मृत्यु कहती है कि हमें तो अभी ही जाना होगा।

लोग सोचते हैं कि जिनके पास सभी भौतिक सुख-सुविधाएं हों, उन्हें सत्संग की क्या आवश्यकता होगी, और उनकी सत्संग में रुचि भी क्यों होगी? मैं हमेशा कहता हूँ- जब लोग भौतिक रूप से सन्तुष्ट और परिपूर्ण होते हैं, तब मन सोचने लगता है कि जीवन में पाने के लिए और क्या है? जो भी संसार मुझे दे सकता है वह सब पाने पर भी जीवन में शान्ति, सुख और आनन्द का अभाव क्यों पाता हूँ।

मैं उसे कहाँ पा सकता हूँ? इस कारण भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को कहते हैं कि अपने मन को मुझमें, अर्थात् अपनी अन्तरात्मा में लगाओ, आसक्त करो।

कल्पना कीजिए बिजली के बल्ब की, जो बिजली के स्रोत - प्लग से जुड़ा हुआ नहीं है। बिजली के बिना बल्ब प्रकाश नहीं दे सकता, पर जैसे ही प्लग का बटन दबाते हैं, वह प्रकाश देने लगता है। ठीक उसी प्रकार आत्मा के अनुभव से जुड़े बिना जीवात्मा प्रकाश देने में असमर्थ है। वह किसी से जुड़ने का अवसर ढूँढती है। परन्तु किसी बाह्य वस्तु से आसक्ति-जुड़ाव भी सीमित समय के लिए ही होता है। आसक्ति तो अपनी अन्तरात्मा के साथ ही होनी चाहिए। बाबाजी कहते थे- विचार करो जब तुम मरते हो तब तुम्हारे साथ कौन और क्या जाता है? जब तुम मरते हो तब तुम कौन हो? वह तुम कौन है? हमें यही खोज निकालना है।

सन्तजन कहते हैं यदि हम सतत् वह आन्तरिक सम्बन्ध बनाए रखें तो बुरा समय होगा ही नहीं, क्योंकि मन को यह ज्ञान होता है कि यह तो केवल एक अवस्था है जिससे वह उस समय गुजर रहा है।

भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं “योगं युज्जन्” अपने को आत्मा से जोड़ दो क्योंकि जब हम शरीर त्यागते हैं तब यही आत्मा शरीर छोड़कर जाती है। उस शक्ति के बिना इस स्थूल शरीर में बल नहीं, ओज नहीं। जब हम निद्रा लेते हैं तब हम इसी शक्ति के सम्पर्क में आते हैं। हम नई शक्ति से भर जाते हैं और सभी शक्तियों का उपयोग हम दिनभर के कार्यों में करते हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं, “मदाश्रयः” अर्थात् तू मेरी शरण ले- सदा मेरा सहारा ले। आत्मा की शरण में जाओ क्योंकि बाहर शरण-सहारा कितने समय काम आएगा? अधिकांश लोग योग की ओर मुड़ते हैं जब बाह्य स्तर पर उनका सब कुछ छिन जाता है। तब वे सोचते हैं और कुछ नहीं बचा तो चलो मैं परमात्मा के पास जाता हूँ। शायद ये लोग सोचते हैं कि जब तक सब कुछ ठीक चल रहा है तब तक परमात्मा

को कष्ट नहीं देना चाहिए। परन्तु सन्तजन कहते हैं यदि हम सतत् वह आन्तरिक सम्बन्ध बनाए रखें तो बुरा समय होगा ही नहीं, क्योंकि मन को यह ज्ञान होता है कि यह तो केवल एक अवस्था है जिससे वह उस समय गुजर रहा है। इस कारण भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन को उपदेश करते हैं- अंतरात्मा की शरण लो। भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को मन को आत्मा से आसक्त करने का उपदेश दिया। उसे आत्मा से बांध दो, जोड़ दो। उस आत्मा की शरण लो।

अर्जुन प्रश्न करता है “कैसे?” “असंशयं” बिना किसी संशय के। क्योंकि भले ही हम उसे आत्मा से जोड़ दें, उससे बांध दें और सोचें कि मैं उसी (आत्मा) के अनुभव में जी रहा हूँ पर फिर मन संशय करता है, संदेह करता है। मैं परमात्मा की प्रार्थना कर रहा हूँ पर क्या परमात्मा मुझे सुनता है? और भी लोग प्रार्थना कर रहे हैं तो परमात्मा कैसे

भगवान् ने अर्जुन को यही बतलाया है कि मन जो आत्मा से अलग है और अपने को भिन्न मानता है, उसे आत्मा से जोड़ दो, आत्मा में लय कर दो।

जानता है कि कौन किसके लिए प्रार्थना कर रहा है? मन में अनेक संशय हैं इसलिए भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन को कहते हैं- “असंशयं”- संशय के बिना। शास्त्र इसे श्रद्धा कहते हैं- पूर्ण विश्वास, सही समझ। सन्त सदा कहते हैं- 'मेरा परमात्मा मेरा रक्षण करेगा, उनके मन में इस बारे में संदेह ही नहीं कि परमात्मा है, उनको दृढ़ विश्वास है कि आत्मा है और वह मेरा ध्यान रखेगी।

सन्त कहते हैं कि जब आप पानी में नमक मिला देते हैं फिर पानी कहाँ और नमक कहाँ? वे सब एक हो जाते हैं। इसी प्रकार हमें जब यह ज्ञान हो जाता है कि आत्मा एक है, सभी में है, तब मन सभी में उसी का दर्शन करने लग जाता है। भगवान् ने अर्जुन को यही बतलाया है कि मन जो आत्मा से अलग है और अपने को भिन्न मानता है, उसे आत्मा से जोड़ दो, आत्मा में लय कर दो। मनुष्य सोचता है कि मैं इस ज्ञान का क्या करूँगा? कल

प्रातः उठकर मैं अपने काम पर चला जाऊँगा। मैं लोगों से मिलूँगा- कुछ जो मुझे अच्छे लगते हैं और कुछ जो मुझे अच्छे नहीं लगते हैं। तब क्षणभर रुको, विचार करो यदि मैं अपने आपको अंतर के उस स्थान से जोड़ सकूँ, जो आत्मा के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। बाह्य जगत् में कोई मनुष्य कैसा है, इससे क्या फर्क पड़ता है। वह भी उसी आत्मा का रूप है जो उस व्यक्ति के रूप में प्रकट हो रहा है। मुझे अपने मन, अपनी इन्द्रियों को इसमें आसक्त नहीं होने देना चाहिए। मुझे अपनी आत्मा में स्थिर रहना चाहिए फिर अपने अंतर में उस स्थान से शान्ति स्फुरित होगी ना कि कोई और भाव। कई बार लोग कहते हैं कि अपने अंतर में स्थिर रहना या अंतर में शान्त रहना स्वार्थ है। मैं सदा प्रश्न करता हूँ कि आपके दो मित्र हैं- एक प्रसन्नचित्त है और दूसरा उदासमुख। आप किसके पास जाएंगे? आप सदा वहाँ जाएंगे जो प्रसन्न है, जो खिन्न है उसके

यदि हम स्थिर हैं तो हम चारों ओर स्थिरता ही फैलाते हैं। जब हम शान्त होते हैं तो चारों ओर शान्ति फैलाते हैं, जब हम सन्तुष्ट होते हैं तो चारों ओर संतोष फैलाते हैं।

पास आप कम ही जाएंगे और आप हमेशा यही प्रयास करेंगे कि आपको प्रसन्नचित मित्र के पास ही जाने का अवसर प्राप्त हो। तो क्या यह स्वार्थ नहीं? इसी से हमारे जीवन में परिवर्तन प्रारम्भ होता है जब हम यह समझने लगते हैं कि परिवर्तन मेरे अन्तर में होना है। तब हम सभी को आनन्द, एकाग्रता तथा स्थिरता देते हैं। यदि हम स्थिर हैं तो हम चारों ओर स्थिरता ही फैलाते हैं। जब हम शान्त होते हैं तो चारों ओर शान्ति फैलाते हैं, जब हम सन्तुष्ट होते हैं तो चारों ओर संतोष फैलाते हैं और जो हम चारों ओर फैला रहे हैं वही हमारा स्वागत करने के लिए हमारे सामने होगा। हम अक्सर यही सोचते हैं कि इसका कारण यह है, वह है जबकि वास्तव में कारण “मैं” हूँ।

बाबा मुक्तानन्दजी अक्सर कहते थे, “आप मेरे पास इस आशा से आते हैं कि मैं आपको कुछ दूंगा। मैं तो आपको केवल वही दिखलाऊंगा जो

आपके पास पहले ही है।” मेरे विचार में यह एक महान सिखावनी है। सन्त हमें यह बोध कराते हैं कि पाने के लिए कुछ नहीं है, वह जो पाया है या पाना चाहते हो वह तो पहले से ही है, उसे जानो, पहचानो, उसका दर्शन करो।



सद्गुरुनाथ महाराज की जय